न्यास का स्वरूप एवं प्रयोग

न्यास का अर्थ है स्थापन। बाहर और भीतर के प्रत्येक अङ्ग में इष्टदेवता और मन्त्र का स्थापन ही न्यास है। इस स्थूलशरीर में अपवित्रता का ही साम्राज्य है, इसलिये इसे देवपूजा का तबतक अधिकार नहीं जबतक यह शुद्ध एवं दिव्य न हो जाय। जबतक इसकी अपवित्रता बनी रहती है, तबतक इसके स्पर्श और स्मरण से चित्त में ग्लानि का उदय होता रहता है। ग्लानियुक्त चित्त प्रसाद और भावोद्रेक से शून्य होता है, विक्षेप और अवसाद से आक्रान्त होने के कारण बार-बार प्रमाद और तन्द्रा से अभिभूत हुआ करता है। यही कारण है कि न तो वह एकतार स्मरण ही कर सकता है और न विधि-विधान के साथ किसी कर्म का साङ्गोपाङ्ग अनुष्ठान ही। इस दोष को मिटाने के लिये न्यास सर्वश्रेष्ठ उपाय है। शरीर के प्रत्येक अवयव में जो क्रियाशक्ति सुषुप्त हो रही है, हृदय के अन्तराल में जो भावनाशक्ति मूर्च्छित है, उनको जगाने के लिये न्यास अव्यर्थ औषधि है।

न्यास कई प्रकार के होते हैं। मातृकान्यास, स्वर और वर्णों का होता है। मन्त्रन्यास पूरे मन्त्र का, मन्त्र के पदों का, मन्त्र के एक-एक अक्षर का और एक साथ ही सब प्रकार का होता है। देवतान्यास शरीर के बाह्य और आभ्यन्तर अङ्गों में अपने इष्टदेव अथवा अन्य देवताओं के यथास्थान न्यास को कहते हैं। तत्त्वन्यास वह है, जिसमें संसार के कार्य-कारण के रूप में परिणत और इनसे परे रहनेवाले तत्त्वों का शरीर में यथास्थान न्यास किया जाता है। यही पीठन्यास भी है। जो हाथों की सब अङ्गुलियों में तथा करतल और करपृष्ठ में किया जाता है, वह करन्यास है। जो त्रिनेत्र देवताओं के प्रसङ्ग में षडङ्ग और अन्य देवताओं के प्रसङ्ग में पञ्चाङ्ग होता है, उसे अङ्गन्यास कहते हैं। हृदय, शिर, शिखा, कवच, नेत्र एवं करतल इन छः अंगों में मन्त्र का न्यास करना अंगन्यास कहलाता है। कुलार्णव तन्त्र में लिखा है कि जो व्यक्ति न्यासरूपी कवच से आच्छादित होकर मन्त्र का जप करता है, उसकी साधना में विघ्न-बाधाएँ स्वयं दूर हो जाती हैं तथा उसे निश्चित सिद्धि मिलती है। जो व्यक्ति अज्ञान या प्रमादवश न्यास नहीं करता उसे पग-पग पर विघ्नों का सामना करना होता हैं।

यो न्यासकवचच्छन्नो मन्त्रं जपति तं प्रिये।
दृष्ट्वा विघ्नाः पलायन्ते सिंहं दृष्टवा यथा गजाः।।
अकृत्वा न्यासजालं यो मूढात्मा कुरुते जपम्।
विघ्नैः स बाध्यते नूनं व्याघ्रैर्मृगशिशुर्यथा।। (पुरश्चर्यार्णव पृ. 187)

सामान्यतया अंगन्यास का क्रम एवं इनके मन्त्रों का वर्णन अपने कल्प या आगम ग्रन्थों में मिल जाता है। किन्तु जहाँ अंगन्यास के मन्त्र निर्दिष्ट न हों वहाँ देवता के नाम के आदि अक्षर या बीज द्वारा न्यास कर लेना चाहिये। जो किसी भी अङ्ग का स्पर्श किये बिना सर्वाङ्ग में मन्त्रन्यास किया जाता है, वह व्यापकन्यास कहलाता है। ऋष्यादिन्यास के छः अङ्ग होते हैं-सिर में ऋषि,

मुख में छन्द, हृदय में देवता, गुह्यस्थान में बीज, पैरों में शक्ति और सर्वाङ्ग में कीलक। और भी बहुत-से न्यास हैं, जिनका वर्णन प्रसङ्गानुसार किया जायगा।

न्यास चार प्रकार से किये जाते हैं। मन से नियत स्थानों में देवता, मन्त्रवर्ण, तत्त्व आदि की स्थिति की भावना की जाती है। अन्तर्न्यास केवल मन से होता है। बहिर्न्यास केवल मन से भी होता है और नियत स्थानों के स्पर्श से भी। स्पर्श दो प्रकार से किया जाता है, किसी पुष्प से अथवा अङ्गुलियों से। अङ्गुलियों का प्रयोग दो प्रकार से होता है। एक तो अङ्गुष्ठ और अनामिका को मिलाकर सब अङ्गों का स्पर्श किया जाता है और दूसरा भिन्न-भिन्न अङ्गों के स्पर्श के लिये भिन्न-भिन्न अङ्गुलियों का प्रयोग किया जाता है। विभिन्न अङ्गुलियों के द्वारा न्यास करने का क्रम इस प्रकार है-मध्यमा, अनामिका और तर्जनी से हृदय; मध्यमा और तर्जनी से सिर; अङ्गूठे से शिखा; दसों अङ्गुलियों से कवच; तर्जनी, मध्यमा और अनामिका से नेत्र; तर्जनी और मध्यमा से करतल-करपृष्ठ में न्यास करना चाहिये। यदि देवता त्रिनेत्र हो तो तर्जनी, मध्यमा और अनामिका से, द्विनेत्र हो तो मध्यमा और तर्जनी से नेत्र में न्यास करना चाहिये। पञ्चाङ्गन्यास नेत्र को छोड़कर होता है। वैष्णवों के लिये इसका क्रम भिन्न प्रकार का है। ऐसा कहा गया है कि अङ्गूठे को छोड़कर सीधी अङ्गुलियों से हृदय और मस्तक में न्यास करना चाहिये। अङ्गूठे को अंदर करके मुट्ठी बाँधकर शिखा का स्पर्श करना चाहिये। सब अङ्गुलियों से कवच, तर्जनी और मध्यमा से नेत्र, नाराचमुद्रा से दोनों हाथों को ऊपर उठाकर अङ्गूठे और तर्जनी के द्वारा मस्तक के चारों ओर करतलध्वनि करनी चाहिये।[1] कहीं-कहीं अङ्गन्यास का मन्त्र नहीं मिलता, ऐसे स्थान में देवता के नाम के पहले अक्षर से अङ्गन्यास करना चाहिये।

शास्त्र में यह बात बहुत जोर देकर कही गयी है कि केवल न्यास के द्वारा ही देवत्व की प्राप्ति और मन्त्रसिद्धि हो जाती है।[2] हमारे भीतर-बाहर अङ्ग-प्रत्यङ्ग में देवताओं का निवास है, हमारा अन्तस्तल और बाह्य शरीर दिव्य हो गया है-इस भावना से ही अदम्य उत्साह, अद्भुत स्फूर्ति और नवीन चेतना का जागरण अनुभव होने लगता है। जब न्यास सिद्ध हो जाता है, तब तो भगवान् से एकत्व स्वयंसिद्ध ही है। न्यास का कवच पहन लेने पर कोई भी आध्यात्मिक अथवा आधिदैविक विघ्न पास नहीं आ सकते; जब कि बिना न्यास के जप, ध्यान आदि करने पर अनेकों प्रकार के विघ्न उपस्थित हुआ करते हैं।

आचारेन्दुः में कहा गया है कि ध्यान, जप, होम तथा मन्त्रसिद्धि बिना अंगन्यास के नहीं

1. मन्त्रमहोदधिः (21/146-157) में विष्णु, शक्ति एवं शिव के मन्त्रों की अंगन्यास की मुद्रायें विस्तार से बतलायी गयीं हैं। यहाँ पर शिव एवं विष्णु मन्त्रों की बतलायी गयीं मुद्रायें मन्त्रमहोदधिः की मुद्राओं से किंचित भिन्नता रखतीं हैं।

2. **आगमोक्तेन मार्गेण न्यासान् नित्यं करोति यः।**
देवताभावमाप्नोति मन्त्रसिद्धिः प्रजायते।। (पुरश्चर्यार्णव पृ. 187)

होती। पुनः ऋषि, छन्द एवं देवता के न्यास के बिना अगर जप किया भी जाय तो उसका तुच्छ फल होता है।

ध्यानं जपार्चना होमाः सिद्धमन्त्रकृता अपि ।
अङ्गविन्यासविधुरा न दास्यन्ति फलान्यमी ।।
ऋषिच्छन्दोदेवतानां विन्यासेन विना यदा ।
जपः संसाधितोऽप्येष तत्र तुच्छफलं भवेत् ।।

(आचारेन्दुः पृ. 124 तथा थोड़े अन्तर के साथ पुरश्चर्यार्णव पृ. 187)

अर्थात् उत्तम फल की प्राप्ति के लिये न्यास करने के बाद ही मन्त्रजप करना चाहिये। इसी प्रकार मन्त्र का उचित तरीके से विनियोग भी करना चाहिये। मन्त्र को फल की दिशा का निर्देश देना विनियोग कहलाता है। तान्त्रिक परम्परा में ऋषि आदि की जानकारी के साथ-साथ उसका यथार्थ विनियोग करना आवश्यक माना गया है। गौतमीय तन्त्र में कहा गया है कि ऋषि एवं छन्द का ज्ञान न होने पर मन्त्र का फल नहीं मिलता[1] तथा उसका विनियोग न करके मात्र मन्त्र-जप करने से मन्त्र दुर्बल हो जाता है।

प्रत्येक मन्त्र के, प्रत्येक पद के और प्रत्येक अक्षर के अलग-अलग ऋषि, देवता, छन्द, बीज, शक्ति और कीलक होते हैं। मन्त्रसिद्धि के लिये इनके ज्ञान, प्रसाद और सहायता की अपेक्षा होती है। मन्त्रमहोदधिः के प्रथम तरंग(पृ. 11-12) में कहा गया है कि जिस ऋषि ने भगवान् शङ्कर से मन्त्र प्राप्त करके पहले-पहल उस मन्त्र की साधना की थी, वह उसका ऋषि है। वह गुरुस्थानीय होने के कारण मस्तक में स्थान पाने योग्य है। मन्त्र के स्वर-वर्णों की विशिष्ट गति, जिसके द्वारा मन्त्रार्थ और मन्त्रतत्त्व आच्छादित रहते हैं और जिसका उच्चारण मुख के द्वारा होता है, छन्द है और वह मुख में ही स्थान पाने का अधिकारी है। मन्त्र का देवता, जो अपने हृदय का धन है, जीवन का सञ्चालक है, समस्त भावों का प्रेरक है, हृदय का अधिकारी है; हृदय में ही उसके न्यास का स्थान है। मन्त्रशक्ति को उद्भावित करनेवाला तत्त्व बीज कहलाता है। अतः बीज का गुप्तांग(सृजनांग) में न्यास किया जाता है। जिसकी सहायता से बीज मन्त्र बन जाता है, वह तत्त्व शक्ति कहलाता है। उसका पादस्थान में न्यास करते हैं। मन्त्र को धारण करनेवाला या मन्त्रशक्ति को सन्तुलित करनेवाला तत्त्व कीलक कहलाता है। इसका सर्वांग में न्यास किया जाता है। इस प्रकार जितने भी न्यास हैं, सबका एक विज्ञान है और यदि ये न्यास किये जायँ तो शरीर और अन्तःकरण को दिव्य बनाकर स्वयं ही अपनी महिमा का अनुभव करा देते हैं। काफी दिनों की बात है-गङ्गा और सरयू के सङ्गम के पास ही एक ब्रह्मचारी रहते थे, जिनका साधन ही था न्यास। दिनभर वे न्यास ही करते रहते थे। उनमें बहुत-सी सिद्धियाँ प्रकट हुई थीं और उन्हें

1. **ऋषिच्छन्दोऽपरिज्ञानान्न मन्त्रफलभाग्भवेत्।** (पुरश्चर्यार्णव पृ. 184)

बहुत बड़ा आध्यात्मिक लाभ हुआ था। यहाँ संक्षेप से कुछ न्यासों का विवरण दिया जाता है-

मातृकान्यास[1]

ॐअस्य मातृकामन्त्रस्य ब्रह्म ऋषिर्गायत्रीच्छन्दो मातृकासरस्वती देवता हलो बीजानि स्वराः शक्तयः क्लीं कीलकं मातृकान्यासे विनियोगः।

-यह विनियोग करके जल छोड़ दे और ऋष्यादिका न्यास करे। सिर में-ॐ**ब्रह्मणे ऋषये नमः।** मुख में-ॐ **गायत्रीच्छन्दसे नमः।** हृदय में-ॐ **मातृकासरस्वत्यै देवतायै नमः।** गुह्यस्थान में-ॐ **हल्भ्यो बीजेभ्यो नमः।** पैरों में-ॐ **स्वरेभ्यः शक्तिभ्यो नमः।** सर्वाङ्ग में-ॐ **क्लीं कीलकाय नमः।** इसके पश्चात् करन्यास करे-

ॐ अं कं खं गं घं ङं आं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।

ॐ इं चं छं जं झं ञं ईं तर्जनीभ्यां नमः।

ॐ उं टं ठं डं ढं णं ऊं मध्यमाभ्यां नमः।

ॐ एं तं थं दं धं नं ऐं अनामिकाभ्यां नमः।

ॐ ओं पं फं बं भं मं औं कनिष्ठाभ्यां नमः।

ॐ अं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं अः करतलकरपृष्ठाभ्याम् नमः।

इसके अनन्तर इस प्रकार अङ्गन्यास करे-

ॐ अं कं खं गं घं ङं आं हृदयाय नमः।

ॐ इं चं छं जं झं ञं ईं शिरसे स्वाहा।

---

1. मातृकान्यास की विधि भी संप्रदायभेद या क्षेत्रभेद से थोड़े-थोड़े अन्तर से प्राप्त होती है। उदाहरण के लिये 'अनुष्ठानप्रकाशः' में विनियोग वाक्य के अन्दर **'ब्रह्म ऋषि'** की जगह **'प्रजापति ऋषि'** मिलता है। परन्तु यह अन्तर नगण्य है, जबकि **'क्लीं'** कीलकम् की जगह **'क्षं' कीलकम्** प्राप्त होता है जो भारी अन्तर है। इसी प्रकार ऋषि आदि के न्यास में भी अन्तर है जिसे तुलना करके देखा जा सकता है।

'ॐ **ब्रह्मणे ऋषये नमः शिरसि**' की जगह 'ॐ **अँ प्रजापतिऋषये नमः आं शिरसि**'।

'ॐ **गायत्रीच्छन्दसे नमः मुखे**' की जगह 'ॐ **इँ गायत्रीछन्दसे नमः ईं वदनो**'।

'ॐ **मातृकासरस्वत्यै देवतायै नमः हृदये**' की जगह 'ॐ **उँ सरस्वतीदेवतायै नमः ऊँ हृदये**'।

'ॐ **हल्भ्यो बीजेभ्यो नमः गुह्ये**' की जगह 'ॐ **एँ हल्भ्यो बीजेभ्यो नमः ऐं गुह्ये**'।

'ॐ **स्वरेभ्यः शक्तिभ्यो नमः पादयोः**' की जगह 'ॐ **ओं स्वरशक्तिभ्यो नमः औं पादयोः**'।

'ॐ **क्लीं कीलकाय नमः सर्वाङ्गेषु**' की जगह 'ॐ **अँ क्षँ कीलकाय नमः अः सर्वाङ्गेषु**'।

इसी प्रकार करन्यास एवं अंगन्यास की अंतिम पंक्तियों में भी अन्तर है। दोनों प्रकार के न्यासों की अन्तिम पंक्ति में यहाँ पर **'लं'** दो बार आया है। जबकि 'अनुष्ठानप्रकाशः' में **'क्षं'** से पहले आनेवाला **'लं'** का अभाव है। 'मन्त्रमहोदधिः' की विधि के अनुसार ही 'अनुष्ठानप्रकाशः' का भी मत है।(देखें मन्त्रमहोदधिः 1/77-80)

ॐ उं टं ठं डं ढं णं ऊं शिखायै वषट्।

ॐ एं तं थं दं धं नं ऐं कवचाय हुम्।

ॐ ओं पं फं बं भं मं औं नेत्रत्रयाय वौषट्।

ॐ अं यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं अः अस्त्राय फट्।

इस अङ्गन्यास के पश्चात् अन्तर्मातृकान्यास करना चाहिये। शरीर में छः चक्र हैं; उनमें जितने दल होते हैं, उतने ही अक्षरों का न्यास किया जाता है। इसकी प्रक्रिया सम्प्रदायानुसार भिन्न-भिन्न है। यहाँ पहले वैष्णवों की प्रणाली लिखी जाती है।

पायु-इन्द्रिय और जननेन्द्रिय के बीच में सिवनी के पास मूलाधारचक्र है। उसका वर्ण सोनेका-सा है और उसमें चार दल हैं। उन चारों दलों पर प्रणव के साथ इन अक्षरों का न्यास करना चाहिये-**ॐवं नमः, शं नमः, षं नमः, सं नमः।** जननेन्द्रिय के मूल में विद्युत् के समान षड्दल स्वाधिष्ठान कमल है, उसके छः दलों पर प्रणव के साथ इन अक्षरों का न्यास करना चाहिये-**ॐ बं नमः, भं नमः, मं नमः, यं नमः, रं नमः, लं नमः।** नाभि के मूल में नील मेघ के समान दशदल मणिपूरकचक्र है, उसमें इन वर्णों का न्यास करना चाहिये-**ॐ डं नमः, ढं नमः, णं नमः, तं नमः, थं नमः, दं नमः, धं नमः, नं नमः, पं नमः, फं नमः।** हृदय में स्थित मूँगे के समान लाल द्वादशदल अनाहतचक्र में - **ॐ कं नमः, खं नमः, गं नमः, घं नमः, ङं नमः, चं नमः, छं नमः, जं नमः, झं नमः, ञं नमः, टं नमः, ठं नमः** से न्यास करें। कण्ठ में धूम्रवर्ण षोडशदल विशुद्धचक्र है, इसमें-**ॐ अं नमः, आं नमः, इं नमः, ईं नमः, उं नमः, ऊं नमः, ऋं नमः, ॠं नमः, ऌं नमः, ॡं नमः, एं नमः, ऐं नमः, ओं नमः, औं नमः, अं नमः, अः नमः** से न्यास करें। भ्रूमध्यस्थित चन्द्रवर्ण द्विदल आज्ञाचक्र में-**ॐ हं नमः, क्षं नमः** से न्यास करें। इसके पश्चात् सहस्रार पर, जो कि स्वर्ण के समान कान्तिमान् और समस्त स्वर-वर्णों से भूषित है, त्रिकोण का ध्यान करना चाहिये। उसके प्रत्येक कोण पर **ह, ल, क्ष**-ये तीनों वर्ण लिखे हुए हैं। उसकी तीनों रेखाएँ क्रमशः **'अ'** से, **'क'** से और **'थ'** से शुरू हुई हैं। इस त्रिकोण के बीच में सृष्टि-स्थिति-लयात्मक बिन्दुरूप परमात्मा विराजमान हैं। इस प्रकार के ध्यान को अन्तर्मातृकान्यास कहते हैं।

शैवप्रणालीगत अन्तर्मात्रिका न्यास

उपर्युक्त रीति से(जिसका उल्लेख पिछले पृष्ठ की पादटिप्पणी में हुआ है) करन्यास एवं हृदयादि षडंगन्यास करने के बाद पूरक प्रणायाम करते हुए कण्ठ में स्थित चक्र के षोडशपद्मदलों पर **'ॐ अँ आँ इँ ईं उँ ऊँ ऋँ ॠँ ऌँ ॡँ एँ ऐं ओं औं अँ अः'** इन 16 स्वरों का न्यास करे। तदनन्तर कुम्भक प्राणायाम करते हुए हृदयचक्र में स्थित पद्म के 12 दलों, नाभी में स्थित पद्म के 10 दलों तथा लिंग के नीचे स्थित पद्म के 6 दलों तथा गुदा के पास स्थित आधारचक्र के

पद्म के चार दलों पर क्रमशः निम्न रूप से न्यास करे। हृदयस्थ द्वादश दलों पर 'ॐ **कँ नमः, खँ नमः, गँ नमः, घँ नमः, ङँ नमः, चँ नमः, छँ नमः, जँ नमः, झँ नमः, ञँ नमः, टँ नमः और ठँ नमः**' बोलते हुए; नाभी के दस दलों पर 'ॐ **डँ नमः, ढँ नमः, णँ नमः, तँ नमः, थँ नमः, दँ नमः, धँ नमः, नँ नमः, पँ नमः** और **फँ नमः**' बोलते हुए; अधोलिंग के छः दलों पर 'ॐ **बँ नमः, भँ नमः, मँ नमः, यँ नमः, रँ नमः** तथा **लँ नमः**' बोलते हुए तथा आधारचक्र के चार दलों पर 'ॐ **वँ नमः, शँ नमः, षँ नमः** तथा **सँ नमः**' बोलते हुए न्यास करे। तदनन्तर रेचक करते समय ललाटस्थ पद्म के दो दलों पर 'ॐ **हँ नमः**, तथा **क्षँ नमः**,' बोलते हुए दो वर्णों का न्यास करे। इस प्रकार प्राणायाम के तीन अंगों–पूरक(श्वाँस लेना), कुम्भक(श्वाँस रोकना) तथा रेचक करते समय उपर्युक्त 16 स्वरों, 32 वर्णों तथा दो वर्णों का क्रमशः कण्ठ का चक्र, हृदय से लेकर मूलाधार तक के चक्रों तथा आज्ञाचक्र(मस्तक में स्थित चक्र) के कमलों के दलों पर न्यास करे। न्यास करने के बाद निम्नलिखित रूप से ध्यान करे।

आधारे लिङ्गनाभौ प्रकटितहृदये तालुमूले ललाटे द्वे पत्रे षोडशारे द्विदशदशदले द्वादशार्द्धे चतुष्के ।
वासान्ते वालमध्ये डफकठ सहिते कण्ठदेशे स्वराणां हंक्षंतत्त्वार्थयुक्तं सकलदलगतं वर्णरूपं नमामि ।।

ध्यान करने के बाद अन्तर्मात्रिकान्यास समाप्त हो जाता है। अन्तर्मात्रिकान्यास के बाद बहिर्मात्रिकान्यास करना चाहिये।

बहिर्मातृकान्यास

ऋष्यादि षडंगन्यास पूर्ववत् अर्थात् अन्तर्मात्रिकान्यास की भाँति करना चाहिये। तदनन्तर इस न्यास में पहले[1] मातृकासरस्वती का ध्यान करना चाहिये, वह निम्नलिखित है–

पञ्चाशल्लिपिभिर्विभक्तमुखदोः हृत्पद्मवक्षःस्थलां
भास्वन्मौलिनिबद्धचन्द्रशकलामापीनतुङ्गस्तनीम् ।
मुद्रामक्षगुणं सुधाढ्यकलशं विद्याञ्च हस्ताम्बुजै–
र्बिभ्राणां विशदप्रभां त्रिनयनां वाग्देवतामाश्रये ।।

'पचास स्वर–वर्णों के द्वारा जिनके मुख, बाहु, चरण, कटि और वक्षःस्थल पृथक्–पृथक् दीख रहे हैं, सूर्य के समान चमकीले मुकुट पर चन्द्रखण्ड शोभायमान है, वक्षःस्थल बड़ा और ऊँचा है, कर–कमलों में मुद्रा, रुद्राक्षमाला, सुधापूर्ण कलश और पुस्तक धारण किये हुए हैं, अङ्ग–अङ्ग से दिव्य ज्योति बिखर रही है, उन त्रिनेत्रा वाग्देवता मातृकासरस्वती की मैं शरण ग्रहण करता हूँ।'

1. कहीं–कहीं पर न्यास की क्रिया करने के बाद ध्यान का विधान किया गया है।

ऐसा ध्यान करके न्यास करना चाहिये। ऋषि आदि षडंग न्यास अन्तर्मात्रिकान्यास की भाँति पूर्ववत् है। बहिर्मात्रिकान्यास में अङ्गुलियों का नियम अनिवार्य है। इसलिये उन-उन स्थानों के साथ ही अङ्गुलियों की संख्या भी लिखी जा रही है। न्यास करते समय उनका ध्यान रखना चाहिये। संख्या का सङ्केत इस प्रकार है-1-अङ्गूठा, 2-तर्जनी, 3-मध्यमा, 4-अनामिका और 5-कनिष्ठा। जहाँ जितनी अङ्गुलियों का संयोग करना चाहिये वहाँ उतनी संख्या लिख दी गयी है।

ललाट में-ॐ **अं नमः** (3, 4)। मुख पर-ॐ **आं नमः** (2, 3, 4)। आँखों में-ॐ **इं नमः**, ॐ **ईं नमः** (1, 4)। इसी प्रकार पहले ॐ और पीछे **नमः** जोड़कर प्रत्येक स्थान में न्यास करना चाहिये। कानों में-**उं, ऊं** (1)। नासिका में-**ऋं, ॠं** (1, 5)। कपोलों पर-**ऌं, ॡं** (2, 3, 4)। ओष्ठ में-**एं** (3)। अधर में-**ऐं** (3)। ऊपर के दाँतों में-**ओं** (4)। नीचे के दाँतों में-**औं** (4)। ब्रह्मरन्ध्र में-**अं** (3)। मुख में-**अः** (4)। दाहिने हाथ के मूल में-**कं** (3, 4, 5)। केहुनी में-**खं** (3, 4, 5)। मणिबन्ध में-**गं।** अङ्गुलियों की जड़ में-**घं।** अङ्गुलियों के अग्रभाग में-**ङं।** इसी प्रकार बायें हाथ के मूल, केहुनी, मणिबन्ध, अङ्गुलीमूल और अङ्गुल्यग्र में-**चं छं जं झं ञं।** दाहिने पैर के मूल में, दोनों सन्धियों में, अङ्गुलियों के मूल में और उनके अग्रभाग में-**टं ठं डं ढं णं।** बायें पैर के उन्हीं पाँच स्थानों में-**तं थं दं धं नं।** दाहिने बगल में-**पं**, बायें में-**फं** और पीठ में-**बं** (यहाँतक अङ्गुलियों की संख्या केहुनीवाली ही समझनी चाहिये अर्थात् 3, 4, 5)। नाभि में-**भं** (1, 3, 4, 5)। पेट में-**मं** (1 से 5)। हृदय में **यं।** दाहिने कन्धे पर-**रं।** गले के ऊपर-**लं।** बायें कन्धे पर-**वं।** हृदय से दाहिने हाथतक-**शं।** हृदय से बायें हाथतक-**षं।** हृदय से दाहिने पैरतक-**सं।** हृदय से बायें पैरतक-**हं।** हृदय से पेटतक-**लं।** हृदय से मुखतक-**क्षं।** हृदय से अन्ततक हथेली से न्यास करना चाहिये।

ऊपर के न्यास की विधि का विस्तार इस प्रकार समझना चाहिये। अंगुलियों के नियम को ध्यान में रखते हुए न्यास निम्न तरीके से करें।

ॐ अं नमः शिरसि, ॐ आं नमः मुखे, ॐ इं नमः दक्षिण नेत्रे, ॐ ईं नमः वामनेत्रे, ॐ उं नमः दक्षिण कर्णे, ॐ ऊं नमः वामकर्णे, ॐ ऋं नमः दक्षिण नासापुटे, ॐ ॠं नमः वामनासापुटे, ॐ ऌं नमः दक्षिण कपोले, ॐ ॡं नमः वामकपोले, ॐ एं नमः ऊर्ध्वौष्ठे, ॐ ऐं नमः अधरोष्ठे, ॐ ओं नमः ऊर्ध्वदन्तपङ्क्तौ, ॐ औं नमः अधोदन्तपङ्क्तौ, ॐ अं नमः मूर्ध्नि, ॐ अः नमः मुखवृत्ते, ॐ कं नमः दक्षिण बाहुमूले, ॐ खं नमः दक्षिणकूर्परे, ॐ गं नमः दक्षिण मणिबन्धे, ॐ घं नमः दक्षिणाङ्गुलिमूले, ॐ ङं नमः दक्षिणाङ्गुल्यग्रे, ॐ चं नमः वामबाहुमूले, ॐ छं नमः वाम कूर्परे, ॐ जं नमः वाममणिबन्धे, ॐ झं नमः वामाङ्गुलिमूले, ॐ ञं नमः वामाङ्गुल्यग्रे। ॐ टं नमः दक्षिणपादमूले, ॐ ठं नमः दक्षिण जानुनि, ॐ डं नमः दक्षिण गुल्फे, ॐ ढं नमः दक्षपादाङ्गुलिमूले, ॐ णं नमः दक्षपादाङ्गुल्यग्रे। ॐ तं नमः वामपादमूले, ॐ थं नमः वाम

जानुनि, ॐ दं नमः वामगुल्फे, ॐ धं नमः वामपादाङ्गुलिमूले, ॐ नं नमः वामपादाङ्गुल्यग्रे। ॐ पं नमः दक्षपार्श्वे, ॐ फं नमः वामपार्श्वे, ॐ बं नमः पृष्ठे, ॐ भं नमः नाभौ, ॐ मं नमः उदरे।* ॐ यं त्वगात्मने नमः हृदये, ॐ रं असृगात्मने नमः दक्षांसे, ॐ लं मांसात्मने नमः ककुदि। ॐ वं मेदात्मने नमः वामांसे, ॐ शं अस्थ्यात्मने नमः हृदयादिदक्षहस्तान्तम्, ॐ षं मज्जात्मने नमः हृदयादिवामहस्तान्तम्। ॐ सं शुक्रात्मने नमः हृदयादिदक्षिणपादान्तम्। ॐ हं प्राणात्मने नमः हृदयादिवामपादान्तम्।[1] **ॐ लं जीवात्मने नमः हृदयादिजठरान्तम्। ॐ क्षं परमात्मने नमः हृदयादिमुखान्तम्।**

संहारमातृकान्यास

संहारन्यास में ऋषि एवं छन्द पूर्वोक्त ही हैं तथा शारदा देवता मानी गयीं हैं। अतः इसका विनियोग वाक्य इस प्रकार होगा–ॐ **अस्य श्रीसंहारमातृकान्यासस्य ब्रह्मा ऋषिः गायत्री छन्दः शत्रु संहारिणी शारदा देवता हलो बीजानि स्वराः शक्तयः संहारमातृकान्यासे विनियोगः।** बाह्यमातृकान्यास जहाँ समाप्त होता है, वहीं से संहारमातृकान्यास प्रारम्भ होता है। जैसे हृदय से लेकर मुखतक–ॐ **क्षं नमः**। मुख से पेटतक–ॐ **लं नमः**। इस प्रकार उलटे चलकर ललाटतक पहुँच जाना, यह संहारमातृकान्यास है।[2] इसके पूर्व यह ध्यान किया जाता है–

अक्षस्त्रजं हरिणपोतमुदग्रटङ्कं विद्यां करैरविरतं दधतीं त्रिनेत्राम्।
अर्द्धेन्दुमौलिमरुणामरविन्दसंस्थां वर्णेश्वरीं प्रणमत स्तनभारनम्राम्।।[3]

(पुरश्चर्यार्णव पृ. 171)

'जो अपने चार करकमलों में सदा रुद्राक्ष की माला, हरिण–शावक, पत्थर फोड़ने की तीखी टाँकी और पुस्तक लिये रहती हैं, जिनके तीन आँखें हैं और मुकुट पर अर्द्ध चन्द्रमा हैं, शरीर का रंग लाल है, कमल पर बैठी हुई हैं, स्तनों के भार से झुकी हुई उन वर्णेश्वरी को नमस्कार करो।' संहारमातृकान्यास के सम्बन्ध में कुछ लोगों की ऐसी सम्मति है कि यह केवल संन्यासियों को ही करना चाहिये। बाह्यमातृकान्यास में अक्षरों का उच्चारण चार प्रकार से किया जा सकता है। केवल अक्षर, बिन्दुयुक्त अक्षर, सविसर्ग अक्षर और बिन्दु–विसर्गयुक्त अक्षर। विशिष्ट कामनाओं के अनुरूप इनकी व्यवस्था है। इन अक्षरों के पूर्व बीजाक्षर भी जोड़े जाते हैं। वाक्सिद्धि के लिये

---

* यहाँतक 'साधनांक' एवं 'अनुष्ठानप्रकाशः' के न्यासों में कोई अन्तर नहीं है। परन्तु आगे न्यासों का विस्तार थोड़ा भिन्न है। आगे न्यासों का विस्तार अनुष्ठानप्रकाशः के अनुसार किया गया है।

1. न्यास का यहाँतक का विस्तार मन्त्रमहोदधिः (1/89–91) पृ. 24–25 के अनुसार है। मन्त्रमहोदधिः में आगे न्यास का जो विस्तार दिया है वह यहाँ से थोड़ा भिन्न है।

2. मन्त्रमहोदधिः के अनुसार मातृकावर्णों ('अ' से 'क्ष' तक) का न्यास विपरीत क्रम से करने का नाम संहारन्यास है। अर्थात् ॐ **क्षं नमः ललाटे, ॐ हं नमः मुखे, ॐ सं नमः दक्षनेत्रे** इत्यादि।)

3. मन्त्रमहोदधिः में ध्यान का मन्त्र भिन्न दिया गया है पर भावार्थ में काफी समानता है।

ऐं, श्रीवृद्धिके लिये **श्रीं**, सर्वसिद्धि के लिये **नमः**, वशीकरण के लिये **क्लीं** और मन्त्रप्रसादन के लिये **अः** जोड़ा जाता है। मन्त्रशास्त्र में ऐसा कहा गया है कि मातृकान्यास के बिना मन्त्रसिद्धि अत्यन्त कठिन है।

मन्त्रा मूकत्वमायान्ति विन्यासेन विना लिपेः।
सर्वमन्त्रप्रसिद्ध्यर्थं तस्मादादौ लिपिं न्यसेत्।। (पुरश्चर्यार्णव पृ. 168)

पीठन्यास

मन्त्रादि के जप का अनुष्ठान करने से पहले ऋषि, छन्द एवं देवता आदि के न्यास तथा कर एवं हृदयादि षंडगन्यास किये जाते हैं। इसके पश्चात् पीठन्यास किया जाता है।

देवता के निवासयोग्य स्थान को 'पीठ' कहते हैं। जैसे कामाख्यादि स्थानविशेष पीठ के नाम से प्रसिद्ध हैं। जैसे बाह्य आसनविशेष शास्त्रीय विधि के अनुष्ठान से पीठ के रूप में परिणत हो जाता है, वैसे ही पीठन्यास के प्रयोग से साधक का शरीर और अन्तःकरण शुद्ध होकर देवता के निवास करने योग्य पीठ बन जाता है। वर्तमान युग में जो दो प्रकार के पीठ प्रचलित हैं, समन्त्रक और अमन्त्रक, उन दोनों की अपेक्षा यह पीठन्यास उत्तम है, क्योंकि इसमें बाह्य आलम्बन की आवश्यकता नहीं है। यह साधक के शरीर में ही मन्त्रशक्ति, भावशक्ति, प्राणशक्ति और अचिन्त्य दैवी शक्ति के सम्मिश्रण से उत्पन्न हो जाता है। विचारदृष्टि से देखा जाय तो पीठन्यास में जितने तत्त्वों का न्यास किया जाता है वे प्रत्येक शरीर में पहले से ही विद्यमान हैं। स्मृति और मन्त्र के द्वारा उन्हें अव्यक्त से व्यक्त किया जाता है, उनके सूक्ष्मरूप को स्थूलरूप में लाया जाता है। यह

1. 'अनुष्ठानप्रकाशः' में यहाँ लिखे गये प्रयोग से थोड़ी भिन्नता है। पाठकों की जानकारी के लिये हम यहाँ पर उसे लिख रहे हैं जो शैवों की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

आधार में '**ॐ मं मण्डूकाय नमः**', लिङ्ग में '**ॐ कां कालाग्निरुद्राय नमः**', नाभि में '**ॐ कूं कूर्माय नमः**', हृदय में '**ॐ आं आधारशक्तये नमः, ॐ अं अनंताय नमः, ॐ धं धरायै नमः, ॐ सुं सुधासिंधवे नमः, ॐ श्वं श्वेतद्वीपाय नमः, ॐ सुं सुराङ्घ्रिपाय नमः, ॐ मं मणिहर्म्याय नमः तथा ॐ हें हेमपीठाय नमः**', दाहिने कंधे पर '**ॐ धं धर्माय नमः**, बायें कंधे पर '**ॐ ज्ञां ज्ञानाय नमः**', बायें ऊरु पर '**ॐ वैं वैराग्याय नमः**', दाहिने ऊरु पर '**ॐ ऐं ऐश्वर्याय नमः**', मुख पर '**ॐ अं अधर्माय नमः**', बायें पार्श्व में '**ॐ अँ अज्ञानाय नमः**', नाभि में '**ॐ अं अवैराग्याय नमः**', दाहिने पार्श्व में '**ॐ अं अनैश्वर्याय नमः**' बोलकर न्यास करना चाहिये। तदनन्तर पुनः हृदय में '**ॐ अं अनन्ताय नमः**', **ॐ तं तत्त्वपद्माय नमः, ॐ आं आनन्दमयकन्दाय नमः, ॐ सं संविन्नालाय नमः, ॐ विं विकारमयकेसरेभ्यो नमः, ॐ प्रं प्रकृत्यात्मकपत्रेभ्यो नमः, ॐ पं पंचाशद्वर्णकर्णिकायै नमः**, (इन कर्णिकाओं में) **ॐ सूं सूर्यमण्डलाय नमः, ॐ इं इन्दुमण्डलाय नमः, ॐ पां पावकमण्डलाय नमः, ॐ सं सत्त्वाय नमः, ॐ रं रजसे नमः, ॐ तं तमसे नमः, ॐ आं आत्मने नमः, ॐ अं अन्तरात्मने नमः, ॐ पं परमात्मने नमः, ॐ ह्रीं ज्ञानात्मने नमः, ॐ मां मायातत्त्वाय नमः, ॐ कं कलातत्त्वाय नमः, ॐ विं विद्यातत्त्वाय नमः** तथा **ॐ पं परतत्त्वाय नमः**, को बोलकर न्यास करना चाहिये।

शैवों के पीठ देवता की पूजा भी उपर्युक्त की भाँति (मामूली अन्तर के साथ) की जाती है। अर्थात् **ॐ मण्डूकाय नमः**, **ॐ कालाग्निरुद्राय नमः** से .....**ॐ परतत्त्वाय नमः** तक उक्त श्लोक बोलकर।

सृष्टिक्रम के इतिहास के सर्वथा अनुकूल है और यह साधक को देवता का पीठ बना देने में समर्थ हैं। इसका प्रयोग निम्नलिखित प्रकार से होता है[1]-

प्रत्येक चतुर्थ्यन्त पद के साथ, जिनका उल्लेख आगे किया जा रहा है, पहले ॐ और पीछे **नमः** जोड़कर यथास्थान न्यास करना चाहिये जैसे 'ॐ **आधारशक्तये नमः**। इसी प्रकार क्रमशः सबके साथ ॐ और **नमः** जोड़कर न्यास का विधान है।

हृदय में- **आधारशक्तये, प्रकृत्यै, कूर्माय, अनन्ताय, पृथिव्यै, क्षीरसमुद्राय, श्वेतद्वीपाय, मणिमण्डपाय, कल्पवृक्षाय, मणिवेदिकायै, रत्नसिंहासनाय ।**

दाहिने कन्धे पर- **धर्माय**
बायें कन्धे पर- **ज्ञानाय**
बाये ऊरु पर- **वैराग्याय**
दाहिने ऊरु पर- **ऐश्वर्य्याय**
मुख पर- **अधर्माय**
बायें पार्श्व में- **अज्ञानाय**
नाभि में- **अवैराग्याय**
दाहिने पार्श्व में- **अनैश्वर्य्याय**

फिर हृदय में- **अनन्ताय, पद्माय, अं सूर्यमण्डलाय द्वादशकलात्मने, उं सोममण्डलाय षोडशकलात्मने, मं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने, सं सत्त्वाय, रं रजसे, तं तमसे, आं आत्मने, अं अन्तरात्मने, पं परमात्मने, ह्रीं ज्ञानात्मने।**

सबके साथ पहले ॐ और पीछे **नमः** जोड़कर न्यास कर लेने के पश्चात् हृदय-कमल के पूर्वादि केसरों पर इष्टदेवताकी पद्धति के अनुसार पीठशक्तियों का न्यास करना चाहिये। उनके बीच में इष्टदेवता का मन्त्र, जो कि इष्टदेवतास्वरूप ही है, स्थापित करना चाहिये। इस न्यास से साधक के हृदय में ऐसा पीठ उत्पन्न हो जाता है, जो अपने देवता को आकर्षित किये बिना नहीं रहता।

इन न्यासों के अतिरिक्त और भी बहुत से न्यास हैं, जिनका वर्णन उन-उन मन्त्रों के प्रसङ्ग में आता है। उनके विस्तार की यहाँ आवश्यकता नहीं हैं। वैष्णवों का एक केशवकीर्त्यादिन्यास है, उसमें भगवान् के केशव, नारायण, माधव आदि मूर्तियों को उनकी शक्तियों के साथ शरीर के विभिन्न अङ्गों में स्थापित करके ध्यान किया जाता है। इसी प्रकार शैवों का श्रीकण्ठादिकलान्यास है। न्यास के फल में कहा जाता है कि न्यास का प्रयोग करनेमात्र से साधक भगवान् के समान हो जाता है।

न्यास के प्रकार-भेदों की चर्चा न करके यहाँ इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि सृष्टि

के गम्भीर रहस्यों की दृष्टि से न्यास भी एक अतुलनीय साधन है। वर्णों के न्यास से वर्णमयी सृष्टि का उद्बोध होकर परमात्मा के स्वरूप का ज्ञान और प्राप्ति हो जाती है, क्योंकि जब यह सृष्टि नहीं थी, तब प्रथम कम्पन के रूप में प्रणव प्रकट हुआ और उस प्रणव से ही समस्त स्वर-वर्णों का विस्तार हुआ। उनके आनुपूर्वी-संघटन से वेद और वेद से समस्त सृष्टि। इस क्रम से विचार करने पर ज्ञात होता है कि ये समस्त महान् और अणु, स्थूल एवं सूक्ष्म पदार्थ अन्तिम रूप में वर्ण ही हैं। वर्णों के न्यास और इनकी वर्णात्मकता के ध्यान से इनका वास्तविक रूप, जो कि दिव्य है, दृष्टिगोचर हो जाता है और फिर तो सर्वत्र दिव्यता ही दिव्यता छा जाती है। समस्त नाम-रूपात्मक जगत् में अव्यक्त रूप से रहनेवाली दिव्यता को व्यक्त करने के लिये वर्णन्यास अथवा मन्त्रन्यास सर्वोत्तम साधनों में से एक है।

पीठन्यास, योगपीठन्यास अथवा तत्त्वन्यास के द्वारा भी हम उसी परिणाम पर पहुँचते हैं, जो साधना का अन्तिम लक्ष्य होना चाहिये। अधिष्ठान परब्रह्म में आधारशक्ति, प्रकृति एवं क्रमशः सम्पूर्ण सृष्टि स्थित है। क्षीरसागर में मणिमण्डप, कल्पवृक्ष, रत्नसिंहासन आदि की भावना करते-करते अन्तःकरण सर्वथा अन्तर्मुख हो जाता है और इष्टदेवता का ध्यान करते-करते समाधि लग जाती है। एक ओर तो उस सृष्टिक्रम का ज्ञान होने से बुद्धि अधिष्ठानतत्त्व की ओर अग्रसर होने लगती है और दूसरी ओर मन इष्टदेव को प्राप्त करके उन्हीं में लय होने लगता है। इस प्रकार परमानन्दमयी अवस्था का विकास होकर सब कुछ भगवान् ही है और भगवान् के अतिरिक्त और कोई अन्य सत्ता नहीं है, इस सत्य का साक्षात्कार हो जाता है।

सिर में ऋषि, मुख में छन्द और हृदय में इष्टदेवता का न्यास करने के अतिरिक्त जब सर्वाङ्ग में-यों कहिये कि रोम-रोम में सशक्तिक देवता का न्यास कर लिया जाता है, तो मन को इतना अवकाश ही नहीं मिलता अर्थात् इससे मधुर अन्यत्र कहीं स्थान नहीं मिलता कि वह और कहीं बाहर जाय । शरीर के रोम-रोम में देवता, अणु-अणु में देवता और देवतामय शरीर! ऐसी स्थिति में यह मन भी दिव्य हो जाता है। जड़ता के चिन्तन से और अपनी जड़ता से यह संसार मन को जड़रूप में प्रतीत होता है। इसका वास्तविक स्वरूप तो चिन्मय है ही, यह चिन्मयी लीला है। जब चिन्मय के ध्यान से इसकी जड़ता निवृत्त हो जाती है, तो सब चिन्मय के रूप में ही स्फुरित होने लगता है। जब इसकी चिन्मयता का बोध हो जाता है, तब अन्तर्देश में रहनेवाला निगूढ़ चैतन्य भी इस चिन्मय से एक हो जाता है और केवल चैतन्य-ही-चैतन्य अवशेष रहता है।

यहाँ न्यास के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा गया है, वह न्यास के स्वरूप और महिमा को देखते हुए बहुत ही स्वल्प है। हमारी सीमा को देखते हुए विज्ञजन क्षमा करेंगे।

(यह लेख मुख्यतः गीताप्रेस, गोरखपुर द्वारा प्रकाशित साधनांक, मन्त्रमहोदधिः, पुरश्चर्यार्णव, संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली द्वारा 1985 में प्रकाशित तथा अनुष्ठानप्रकाशः पर आधारित है।)